समीक्षायण

'एहसास का एहसान्'

पूर्णिमा मित्रा

'एहसास का एहसान्' डॉ. गिरिजा शंकर शर्मा की पन्द्रह कहानियों का एक अनूठा संग्रह है, जो संवेदी पाठकों के मर्म को छू लेता है।

इस संग्रहरूपी पुष्पगुच्छ में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों के विविध पुष्पों को इस प्रकार बखूबी गूंथा गया है कि सुधी पाठक, यथार्थ पर आधारित इन कहानियों के जादू में खो सा जाता है। इस संग्रह की कई कहानियों में अतीत और वर्तमान की कड़वी हकीकत के काँटे की चुभन है तो कहीं वर्तमान और भविष्य की माननीय संवेदना के सुवासित झौंके भी है। कहानी संग्रह का आवरण ही, इस संग्रह में शामिल कहानियों की भाषा, विषयवस्तु और शैली के बारे में बहुत कुछ कह देता है।

भारतीय संस्कृति और राजस्थानी भाषा से गहरा जुड़ाव रखने वाले मितभाषी डॉ. शर्मा, अपने लेखन को स्वत: सुखाय मानते हैं। कहानी संग्रह की शीर्षक कहानी 'एहसास का एहसान्' अपने अनूठे क्लाइमेक्स की वजह से नारी विमर्श का मील का पत्थर है। नायिका प्रधान इस कहानी में वासनायुक्त प्रेम और कर्तव्ययुक्त प्रेम की विभाजन रेखा को बड़ी सहजता से उकेरा गया है। मारवाड़ के एक ठिकानेदार मोहब्बतसिंह का दिल एक बंजारन युवती पर आ जाता है। वह उसे अपनी पासवान बना लेता है। उसकी पत्नी और बेटे, उसकी मृत्यु के बारहवें दिन उसे ठिकाने से दूर, एक निर्जन स्थान में छोड़ देते हैं। वही उसकी मुलाकात, गुजरात के एक धनी व्यापारी रामरख से होती है। सुनाली की व्यथाकथा और शालीनता से द्रवित होकर, रामरख उसे अपने साथ गुजरात ले आता है। कुछ समय पश्चात् सुनाली और अपनी पत्नी की सहमति से रामरख सुनाली से विवाह करके, उसे वह सामाजिक मान्यता देता है, जो ठाकुर मोहब्बत की पासवान रहने के दौरान उसे कभी नहीं मिली थी। यही नहीं सुनाली को बिना बताए वह उसे अपनी सम्पत्ति की आधी हिस्सेदार बनाकर उसका भविष्य, आर्थिक रूप से सुरक्षित कर देता है। कृतज्ञ सुनाली, रामरख के प्रति पतिव्रत धर्म का निष्ठापूर्ण पालन करके, इस धारणा को झुठला देती है कि 'स्त्री का पहला प्यार ही सच्चा होता है और प्रियतम पर सर्वस्व न्यौछावर करना, उच्चवर्ण की स्त्रियों की ही थाती है। लेकिन सुनाली, ठाकुर मोहब्बत सिंह के वासनाजनित प्रेम और रामरख के

मर्यादित प्रेम में फर्क नहीं कर पाती। वह ठाकुर के द्वारा प्रदत्त सुविधाओं को प्रेम समझती है। रामरख की मृत्यु के पश्चात, उससे प्राप्त सम्पत्ति को ठाकुर के दोनों बेटों में बांट देती है ताकि वह ठाकुर के एहसान के बोझ से मुक्त हो सके। मजे की बात यह है कि अकाल और गरीबी की मार झेल रहे ठाकुर के दोनों लड़के अपनी हेकड़ी भूलकर, सुनाली के शरणापन्न हो जाते हैं। इस तरह के क्रूर और काईयां पुरुष चरित्र, हमेशा से ही भावुक स्त्रियों की स्त्रीसुलभ भावनाओं का लाभ उठाते रहे हैं। इसे बड़ी तटस्थता से सम्प्रेषणीय ढंग से डॉ. शर्मा ने इस कहानी में, चंद वाक्यों के माध्यम से उभारा है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में, राजस्थान में सामंती परिवेश पर आधारित इस कहानी में कहीं भी अतिश्योक्तिपूर्ण सामंती अत्याचार, फूहड़ द्विअर्थी संवाद लिजलिजे वर्णन और उत्तेजक क्रियाकलाप की बानगी के दर्शन नहीं होते हैं।

कहानी संग्रह की अन्य कहानियों की तरह, इसमें भी डॉ. शर्मा ने बेहद संयमित रूप से अपनी कलम चलाई है। जिससे यह कहानी स्त्री-विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज मानी जा सकती है। इस कहानी में डॉ. शर्मा की मानवीय रिश्तों के कोमल तन्तुओं की अदृश्य बुनावट में शामिल गाँठरूपी ग्रन्थियों पर पैनी दृष्टि की पकड़, सामान्य पाठक से लेकर समीक्षकों को सोचने पर मजबूर कर देती है कि कब तक सुनाली जैसी निष्कपट स्त्रियाँ, स्वार्थी लोगों के बिछाएँ जाल में फंसती रहेगी ? आज के दौर की भावुक आधुनिकताओं को यह कहानी माँ-बाप से बगावत करके 'लिव इन रिलेशनशिप' के दलदल में फंसने से रोकती है।

संग्रह की दूसरी कहानी 'जमनी की जमीन' में विरत और घरेलू काम करके गुजारा करने वाली विधवा जमनी और सरकारी नौकरी के दौरान, सरकारी भूखण्ड पर नाज़ायज कब्जा करके उस जमनी को कुछ समय के लिए डेरे-डंडा डालने का अनुरोध करने वाले रणवीर की कहानी है। किस तरह सत्ता पर काबिज, नगर परिषद्, नगर विकास परिषद्, जिलाधीश कार्यालय में कार्यरत भ्रष्ट लोग भूमिमाफियाओं की तरह सरकारी जमीन को हड़पते है। उसका जीवंत वर्णन इस कहानी में किया गया है। किसी भी तरह ऐसे भष्ट्र अधिकारी, अपने से दबने वाले गरीब परिचितों को दाना डालकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। फिर मौका मिलते ही उन्हें दूध में पड़ी मक्खी की तरह निकाल फेंकते है। लोग भी अपने परिवार का पेट पालने के लिए इनके कुचक्र में शामिल हो जाते हैं। आजादी के करीब सात दशक बाद आज भी गरीब व्यक्ति को न्याय नहीं मिलता, जबकि समर्थ व्यक्ति उनके रसूख व रुपयों के बल पर, गैरकानूनी कार्य करके भी समाज में प्रतिष्ठित माने जाते

है। लेकिन यहां लेखक ने जमनी को जुझारु और स्वाभिमानी व्यक्तित्व का बताकर, उसके संघर्ष को आम आदमी का न्याय पाने की जद्दोजहद को उकेरा है। जिससे यह कहानी एक अबला की न रहकर, पूरे वंचित वर्ग के दर्द को बयान करती प्रतीत होती है। राशनकार्ड में जमनी का फर्जी पति बनकर रणवीर, उस जमीन पर अपना कब्जा साबित करना चाहता है, लेकिन जमनी शेरनी की तरह उसके झूठ को बेनकाब कर देती है। स्त्री सशक्तिकरण पर आधारित यह कहानी बेहद शिक्षाप्रद है।

'शवों का आरक्षण' नामक कहानी में बीसवीं सदी के प्रारम्भ में राजपूताना में, अन्य राज्यों से आए नौकरी पेशा लोगों की समस्याएं दिखाई गई है।

पंजाब से आए लाला धर्मचंद की पत्नी का देहांत होने पर, उसकी शवयात्रा निकाली जाती है। श्मसानघाट का व्यवस्थापक मघजी उन्हें रोककर कहता है, 'यह तो हमारी बिरादरी के लोगों के शवों के दाह के लिए आरक्षित स्थल है।' दूसरी जगह भी इस काम में अगुवा व्यक्ति को ऐसा ही जवाब मिलता है।

'प्याऊ की प्यास' का कथानक बेशक उन्नींसवी सदी से प्रारम्भ होकर बीसवीं सदी के तीसरे दशक तक सीमित है, लेकिन यह आज के युग में भी प्रासंगिक है। आज भी सद्व्यवहार करने वाले कई साधु-पुरुषों के काले कारनामे सामने आने पर लोग चकित रह जाते हैं। बेशक प्याऊ के पास विश्रामस्थल में, लोग रात्रिवास आज नहीं करते, लेकिन परिचितों के घर या रेस्ट हाऊस-सरायखाने मे जेठापुरी जैसे लोग मिल सकते हैं, जो चंद रुपयों-गहनों के लालच में निर्मम हत्या करने से नहीं चूकते। इस कहानी में पं. शीशराम और उनके सिपाहियों की सूझबूझ से अपराधी जेठापुरी को साक्ष्य के आधार पर पकड़ने की कार्यवाही पाठकों को चकित कर देती है।

'रेल बाईपास : एक विरासत' बीकानेर की रेल फाटकों के हर घंटे में दो-तीन बार बंद होने से, आम राहगीरों को होने वाली परेशानियों का जिक्र किया गया है।

बाईपास बनाम ओवरब्रिज की इस लड़ाई में नेताओं की आपसी राजनीति में बीकानेर जैसे कई शहरों की जनता भले ही रोती झींकती रहे। लेकिन सोहनलाल जैसे नेता तो यही चाहते है कि जनसमस्या उलझी रहे तो उनकी नेतागिरी अच्छी चलती रहेगी। समस्या का समाधान न होकर, समाधान का नाटक होता रहे। नगर के सूरसागर के गंदे पानी की समस्या के साथ रेल बाईपास की समस्या बनी रहे ताकि राजनीतिक (भ्रष्ट नेता) अपनी रोटी सेक सके।

'कचरा किताबों का' में पुस्तक खरीदने के लिए नियुक्त, राज्य सरकार की

कमेटी के क्रियाकलाप को बड़ी रोचकता से पाठकों के सामने लाया गया है। इस बात को पुस्तक खरीदने में हुए बंदरबांट का खुलासा कर, पाठकों को लेखक प्रकाशक, बिचौलियों 'मारवाड़ी मैनेजर' में युवा मैनेजर माधोसिंह के चाय बागान के मजदूरों और मजदूर नेताओं को, उन्हीं के अंदाज में सबक सीखाकर, उन्हें पुन: यथावत् कार्य में लगाने के कौशल का उल्लेख है।

'श्रोता का दु:ख' शालीन व्यंग्य रचना का एक उत्तम उदाहरण है। इसमें सरकारी और गैर सरकारी सभाओं में श्रोताओं की कमी पर कटाक्ष करते हुए, आयोजकों द्वारा सभा में भीड़ बढ़ाने के हथकंडों का मुंह बोलता चित्रण है। साथ ही साहित्यिक गोष्ठी में जाने वाले, विभिन्न मनोवृत्तियों वाले लोगों का उल्लेख कर, साहित्य जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार का उल्लेख है। चाय नाश्ते, अखबार में अपना नाम और फोटो देखने के इच्छुक लोगों को, साहित्यकार समझने की भूल करने वालों को चेताती यह रचना, सभाओं में जाकर खाने-पीने के शौकीनों का भी पथप्रदर्शन करती है। 'तरसते दिवास्वप्न' में साहित्यिक गोष्ठियों में श्रोताओं और स्वतन्त्र लेखकों (फ्रीलांज राइटर्स) के अधूरे दिवास्वप्नों की बेलाग चर्चा की गई है। एक तरह यह कहानी पुरस्कार समितियों के, मर्जीदान साहित्यकारों को प्राप्त पुरस्कार, साहित्यिक यात्रा, सम्मान प्राप्त करने को उजागर करती है, तो दादा गुरु रुपी साहित्यिक दादा को खुश करने में लगे उदयभानू जैसे अच्छे खाते-पीते परिवार के मुक्तजीवी लेखक के जमीर के जमीनोंदराज होने का जिक्र करती है।

'उसकी पीड़ा' का नायक सोनू दोस्तों के दबाव में एक बार बिना टिकट रेलयात्रा करता है। टी.सी. के आने पर उसकी मानसिक और शारीरिक अवस्था दयनीय हो जाती है। कुछ सहृदय, सहयात्रियों की मदद से बेरोजगार सोनू सकुशल अपने कस्बे पहुँच जाता है। लेकिन घर आने पर उसे अपनी इस हरकत पर पछतावा होता है। प्रायश्चित के रूप में वह 'दिल्ली की दुबारा यात्रा के दौरान दो टिकट' कटवा लेता है। आगे चलकर सोनू अपने कस्बे के युवाओं को राजनीतिक पार्टियों में हिस्सा लेने हेतु बिना टिकट सफर करने के नुकसान बताता है।

'धायमाता' में तीन अनपढ़ मुस्लिम युवक नाले में फंसी गाय को देखकर, नाले में उतरकर उसे किनारे लाते हैं जबकि भीड़ में शामिल हिन्दु लोग तमाशबीन बने रहते है। काम में विलम्ब होने पर उनका डीपो मालिक, उनकी आधी दिहाड़ी काट लेता है। बाद में गाय के मालिक द्वारा धिक्कारे जाने पर, जब शाम को उनकी पूरी दिहाड़ी देना चाहता है तो दोनों युवक उसे नकार देते हैं। दोनों युवक अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए कहते हे, 'गाय

हमारी माँ नहीं, हमारी धायमाता है।' मूक पशुओं के प्रति संवेदना जागृत करती यह कहानी, तथाकथित गौ-भक्तों की करनी और कथनी के फर्क को, पूरी तरह से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है।

'सहारा' का नायक जगतसिंह लीवर कैंसर का इलाज करवाने शहर आता है। सिक्ख होने की वजह से मोहल्ले वाले उसे आतंकवादी समझते है। सिर्फ एक नेत्रहीन वृद्धा उसका पक्ष लेकर कहती है, देश के दुश्मन का कोई धर्म और जात थोड़े ही होती है।' स्टील की बंद बाल्टी में रखे बम से, दूध के बूथ में खड़े लोगों को बचाने के चक्कर में जगतसिंह बुरी तरह घायल हो जाता है। वह अपनी आखरी इच्छा के रूप में पिता से अपने नेत्रों का प्रत्यारोपण, वृद्धा को कराने का अनुरोध करता है। मोहल्लेवाले अपनी शक की प्रवृत्ति के कारण बाद में लज्जित भी होते है। लेकिन बिना सोचे समझे, किसी पर अपनी राय बना लेने वालों को यह कहानी, संवेदनशील होने की प्रेरणा देती है।

'गुरु के साथ मजाक' में प्राइवेट कॉलेजों में व्याख्याताओं के साथ होने वाले आर्थिक शोषण को उजागर किया गया है।

आरक्षण इस संग्रह की अंतिम कहानी है। शोध निदेशक के लोभी और सनकी होने का खामियाजा आखिरकार स्वाभिमानी और प्रतिभावान युवकों को ही भुगतान पड़ता है। उच्चतर शिक्षाजगत में माफिया रूपी दलाल की भूमिका पर आलोकपात करते हुए डॉ. शर्मा सामान्य माने जाने वाली विषमताओं का दुष्परिणाम भी पाठकों के समक्ष रख देते है।

संक्षेप में इस संग्रह के बारे में यही कहा जा सकता है कि सिर्फ अपने सशक्त कथानक और किस्सागोई की सरलता समेटे, आज के पत्र-पत्रिकाओं की मांग पर आधारित न होकर भी यह पाठकों के साथ सीधा संवाद करती है। लगभग 80 पृष्ठों में सिमटी ये सभी कहानियाँ आम बोलचाल की भाषा में होकर भी, मानवमन की जटिलता पर दृष्टिपात करती है।

व्याख्याता (इतिहास)
बीकानेर